

ऋण की बचत*

रघुराम जी. राजन

सर्वप्रथम मैं इरमा (आईआरएमए) के निदेशक को डॉ. वर्गीस कुरियन के तीसरे व्याख्यान में संबोधित करने के लिए मुझे आमंत्रित करने हेतु धन्यवाद देता हूँ। डॉ. कुरियन सहकारिता आंदोलन के अग्रणी रहे हैं। वे न केवल दुग्ध क्रांति को लाने में सक्रिय रहे थे बल्कि उन्होंने विभिन्न प्रकार की संस्थाओं जैसे- अमूल, इरमा और एनडीडीबी का निर्माण किया। जहां पेशेवर लोग आधुनिक बाजार की अर्थव्यवस्था के बारे में परस्पर विचार-विमर्श में लगे हुए हैं, वही डॉ. कुरियन ने ऐसे साधनों का सृजन किया है जिससे किसान अपना पारिश्रमिक कमा सकते हैं और उन्होंने ऐसा विशिष्ट भारतीय मॉडल बनाया है जिसके माध्यम से लाखों लोगों को गरीबी से बाहर निकाला जा सका है। वे दृढ़ विश्वास, संकल्प व निष्ठा वाले व्यक्ति थे, वे स्वातंत्र्योत्तर भारत के सच्चे महान पुरुष थे।

डॉ. कुरियन ने लोगों को रोजी-रोटी कमाने का जो रास्ता दिखाया, वह शायद आर्थिक समावेशन का सर्वोत्तम तरीका है। उन्होंने जिस प्रकार की प्रौद्योगिकी और संस्थाओं का निर्माण किया है उसके बारे में मेरी विशेषज्ञता उतनी नहीं है इसलिए उनके बारे में मैं बात नहीं करूंगा। बल्कि, मैं मानव-कल्याण को विस्तार देने वाले एक अन्य उपकरण पर ध्यान केंद्रित करना चाहूंगा, जिसे ऋण कहते हैं। ऐसे समय में जब बैंक से ऋण लेने की मांग कमजोर हो, या फिर यदि निवेश बढ़ता है और मांग में भारी वृद्धि आने की संभावना हो जाए, ऐसी स्थितियों में हम यह सवाल कर सकते हैं कि क्या भारत की ऋण प्रणाली स्वस्थ है। दुर्भाग्य से, इसका उत्तर यह है कि हमारी ऋण प्रणाली स्वस्थ नहीं है। हमें आधारभूत स्तर पर सुधार की जरूरत है जिसकी शुरुआत मानसिकता में परिवर्तन से करनी होगी। एक ऐसे महान भारतीय जिसने हमारी मानसिकता को बदलने में बहुत कुछ किया है, उसकी स्मृति में सार्वजनिक व्याख्यान का रखा जाना अत्यधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

ऋण संविदा

ऋण की राशि का प्रवाह, कर्ज संविदा की मर्यादा पर निर्भर करता है। ऋण-संविदा एक ऐसी संविदा है जिसमें उधारकर्ता, चाहे छोटा किसान हो या किसी बड़ी फार्मास्युटिकल परियोजना का प्रवर्तक हो, धन इस वचन के साथ जुटाता है कि वह उसके ब्याज एवं मूल धन

की चुकौती निर्दिष्ट समयानुसार करेगा। यदि उधारकर्ता अपना वचन नहीं निभा पाता है, तो इसका अर्थ हुआ कि उसने चूक की है। ऐतिहासिक रूप से और पूरे विश्व में मानक ऋण-संविदा में चूक का मतलब है कि उधारकर्ता को अत्यधिक त्याग करना पड़ेगा, अन्यथा उसे चुकौती करने पर कोई प्रोत्साहन नहीं मिलेगा। उदाहरण के लिए, मध्यकाल में बार्सेलोना में एक चूक करने वाले बैंकर को कर्ज चुकाने के लिए और समय दिया गया था, किंतु उस दौरान उसका भोजन केवल ब्रेड पानी निर्धारित किया गया था। दिए गए समय की समाप्ति पर यदि वह कर्ज अदा नहीं कर पाता था तो उसकी गर्दन मार दी जाती थी। लेकिन समय गुजरने के साथ-साथ सजा कम कठोर होती गई। यदि आप विक्टोरिया के इंग्लैंड में चूक करें तो आपको कर्जदारों की जेल में डाल दिया जाएगा। आज, उधारकर्ता अजीब तरीके से केवल वह आस्ति खो देता है जिसके लिए वित्त प्रदान किया गया है और कभी-कभी उसकी व्यक्तिगत संपत्ति भी चली जाती है यदि उसकी सुरक्षा सीमित देयता से नहीं की गई होती है, बशर्ते कि उसने धोखाधड़ी पूर्ण व्यवहार न किया हो।

उधारदाता क्यों न हुए पूरे नुकसान को वहन करे ? इसलिए, कि वह उद्यम में केवल वही अकेला पूर्ण प्रबंधकीय भागीदार नहीं है। इसके बदले में यदि उद्यम का निष्पादन अच्छा होता है, उससे होने वाले भारी लाभ में यदि वह हिस्सा नहीं लेता है, तो उसे जब उद्यम को बुरी तरह नुकसान होता है उस समय यथा संभव नुकसान में भागीदार न बनने से मुक्त हो जाता है। इस बात पर सहमति देते हुए कि उधारकर्ता, उधारदाता को 'अपेक्षित जोखिम से अधिक जोखिम' न होने से बचाएगा, उधारकर्ता को सस्ती दर पर वित्त मिल जाता है, और यदि उद्यम सफलतापूर्वक कार्य करता है तो वह उससे होने वाली 'बेशी' आमदनी को अपने पास रख सकता है। इतना ही नहीं, वह एक ऐसे अनजान व्यक्ति से भी धन प्राप्त कर सकता है जिसे उसके उद्यम के बारे में बहुत निकट से जानकारी नहीं है अथवा उसकी प्रबंधन-क्षमता के बारे में मालूमात नहीं है, क्योंकि वह व्यक्ति इस तथ्य से आश्वस्त है कि यदि उधारकर्ता चूक करता है तो वह उसकी अच्छी सी संपात्ति को अपने कब्जे में ले लेगा। यही वजह है कि आज बैंक आपको कार या घर के लिए कर्ज 10 प्रतिशत से थोड़ा अधिक दर पर देते हैं जो नीति-दर से एक-दो प्रतिशत बिंदु ही अधिक होता है।

कर्ज की भावना का उल्लंघन करना

मैं अपने इस व्याख्यान में जिस बात पर ध्यान केंद्रित करना चाहता हूँ वह यह है कि हाल के वर्षों में भारत में ऋण-संविदा की मर्यादा लगातार घटती जा रही है, जिसे न केवल छोटे बल्कि बड़े उधारकर्ता भी कायम नहीं रखते हैं और यदि हम चाहते हैं कि बैंक बड़ी आधारभूत आवश्यकताओं को वित्त प्रदान करें और औद्योगिक विकास, जो यह देश प्राप्त करना चाहता है, तो उक्त प्रवृत्ति में बदलाव लाना होगा।

* डॉ. रघुराम जी. राजन, गवर्नर, भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा 25 नवंबर, 2014 को इरमा, आणंद में आयोजित तृतीय डॉ. वर्गीस कुरियन स्मारक व्याख्यान में दिया गया वक्तव्य

सच्चाई यह है कि बहुत से बड़े उधारकर्ता, उधारदाता अर्थात् बैंक को इस रूप में देखते हैं कि वह उधारकर्ता के परेशानी में आने पर बैंक सभी अन्य दावों को छोड़कर पुराने कर्ज के दावे पर कायम रहने के बजाय उसकी इक्विटी के दावे से भी छोटे दावे पर भी कायम रहता है। विश्व के अधिकांश हिस्से में, जब कभी बड़े उधारकर्ता चूक जाते हैं तो उसपर अफसोस जाहिर करते हुए यह दिखाने का दुस्साहस करते हैं कि उधारदाता उनके उद्यम के प्रबंधन पर भरोसा बनाए रखे। भारत में, अनेक बड़े उधारकर्ता ऐसे हैं जो अपना पैसा नहीं लगाना चाहते और इस बात का आग्रह भी करते हैं कि उद्यम पर उनका नियंत्रण बना रहे। फर्म और उसके बहुत से कामगार, तथा विगत बैंक ऋण, ये सब फांसने वाले खेल के बंधक बने होते हैं - प्रवर्तक यह धमकी देता है कि यदि सरकार, बैंक और विनियामक उतनी रियायत नहीं देते जो उद्यम को चलाने के लिए जरूरी है तो वे उस उद्यम को ठप्प कर देंगे। और यदि फर्म पुनः स्वस्थ हालत में आ जाती है तो प्रवर्तक उससे होने वाली कमाई को रख लेता है और यह भूल जाता है कि उसे सरकार या बैंक से सहायता प्राप्त हुई थी - क्योंकि, जो भी हो, बैंक इस बात से खुश हो जाएंगे कि उन्हें उनका कुछ पैसा वापस मिल गया है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि देश के सरकारी मंत्रियों को इस बात की चिंता होती है कि हमारे देश में बहुत सी बीमार कंपनियां हैं, किंतु इस बात पर ध्यान नहीं है कि कितने प्रवर्तक 'बीमार' हैं। मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मैं अधिसंख्य ऐसे भारतीय व्यावसायियों की निंदा कर्तई नहीं करना चाहता हूँ जो उधारदाताओं को अच्छी तरह मान देते हैं। मैं कारोबार में जोखिम उठाने के विरोध में भी कोई बहस नहीं करना चाहता। यदि कारोबार में जोखिम न उठाए जाते तो हमें वास्तुकला के चमत्कार जैसे - हमारे नये अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे, दूर-संचार क्षेत्र में 'भारत के लिए विकसित' कम लागत के कारोबारी मॉडल, अथवा हमारी विश्व स्तरीय रिफाइनरी प्राप्त न हुई होती। अनिवार्य रूप से जोखिम उठाने का मतलब है चूक होने की संभावना। जिस अर्थव्यवस्था में चूक नहीं है वह एक ऐसी अर्थव्यवस्था है जिसमें प्रवर्तक और बैंक बहुत कम जोखिम उठाते हैं। मैं जिन बातों के विरुद्ध चेतावनी देना चाहता हूँ वह है जोखिम उठाने और उद्यम के प्रतिफल में हिस्सेदारी में असमानता, यह बात पूरे विश्व में स्थापित संविदागत मानदंडों के विरुद्ध है - जहां प्रवर्तकों के पास 'उच्च' कोटि की इक्विटी होती है और जो अच्छे समय की अच्छी आमदनी को रख लेते हैं किंतु बुरे वक्त में घाटे की हिस्सेदारी बहुत ही थोड़ी सी करते हैं, जबकि ऋणदाता, खासतौर से सरकारी क्षेत्र के बैंक, कनिष्ठ कर्ज को कायम रखते हैं और अच्छे समय में होने वाली मोटी कमाई में से उन्हें कुछ नहीं मिलता है बल्कि बुरे वक्त में होने वाले ज्यादातर नुकसान को बैंक ही उठाते हैं।

ऐसा क्यों होता है ?

हमारे यहां इस प्रकार का कार्य-व्यवहार क्यों होता है ? इसका सबसे स्पष्ट कारण यह है कि हमारी व्यवस्था बड़े उधारकर्ताओं की हिमायत करती है और उसे नैसर्गिक अधिकार देती है कि उद्यम पर उसका नियंत्रण बना रहे।

ऐसा कानून की कमी की वजह से नहीं है। आरडीडीबीएफआई अधिनियम, 1963 के अंतर्गत ऋण वसूली न्यायाधिकरणों (डीआरटी) का गठन इसलिए किया गया था कि वे सामान्य सिविल न्यायालयों की लंबी प्रक्रिया में जाए बिना बैंकों और वित्तीय संस्थाओं की बकाया राशियों की शीघ्रता से वसूली में सहायता करें। इस दिशा में सरफेसी अधिनियम, 2002 (एसएआरएफईएसआई) एक कदम आगे का उपाय था जिसमें बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को यह सुविधा प्रदान की गई कि वे अपनी सुरक्षा का प्रवर्तन करें और अपने बकायों की वसूली डीआरटी में जाए बिना कर सकें। अभी भी बैंकों द्वारा जिन ऋणों में चूक हुई है उससे जो वसूली की है वह बहुत ही मामूली है और उसे वसूलने में लंबा समय लगा है। डीआरटी द्वारा वर्ष 2013-14 में जिन मामलों में फैसले दिए गए उनसे कुल 30,590 करोड़ रुपए की वसूली हुई थी जबकि कुल बकाया ऋण जिसकी वसूली की जानी थी वह 2,36,600 करोड़ रुपए की भारी भरकम राशि थी। इस प्रकार, जो राशि दांव पर लगी थी उसका केवल 13% ही वसूला जा सका। इससे भी खराब स्थिति यह है कि कानून यह कहता है कि डीआरटी के समक्ष प्रस्तुत मामलों को 6 महीने में निपटाया जाए, लेकिन वर्ष के प्रारंभ में जो मामले लंबित थे उनमें से एक-चौथाई मामले ही पूरे वर्ष के दौरान निपटाए जा सके - जिसका मतलब है कि यदि न्यायधिकरण केवल पुराने मामलों पर ही ध्यान केंद्रित करें, तब भी उसके निपटने में चार वर्ष तक इंतजार करना पड़ेगा। जबकि 2013-14 में वर्ष के दौरान जो नये मामले दर्ज किए गए उनकी संख्या वर्ष के दौरान निपटाए गए मामलों की संख्या से डेढ़ गुना ज्यादा थी। इस प्रकार से लंबित मामलों की संख्या बढ़ रही है और मामलों को निपटाने में विलंब भी बढ़ता जा रहा है, जो घटने का नाम नहीं ले रहा है।

आखिर ऐसा क्यों हो रहा है ? डीआरटी में दिए गए फैसलों की अपील ऋण वसूली अपीलीय न्यायाधिकरण (डीआरएटी) में की जा सकती है और जहां डीआरटी की संख्या 33 है वहीं डीआरटी की संख्या केवल पांच है। हालांकि आरडीडीबीएफआई अधिनियम की धारा 18 से आशय है कि डीआरटी और डीआरएटी के फैसलों पर उच्च सांविधिक न्यायालय नेमी रूप से हस्तक्षेप करने से परहेज करें, हाल ही में माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस बात पर अफसोस जाहिर किया है कि - 'यह चिंता का विषय है कि न्यायालय के फैसले के

बावजूद उच्च न्यायालय आरडीडीबीएफआई और सरफेसी अधिनियम के अंतर्गत उपलब्ध सांविधिक निदानों को लगातार नज़रअंदाज़ कर रही हैं और आदेश पारित करने के लिए अनुच्छेद 226 के अंतर्गत दी गई शक्तियों का प्रयोग कर रही हैं और बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा उनकी बकाया राशियों को वसूलने के अधिकार पर गंभीर रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है¹।

बारंबार लंबी-लंबी अपीलों की वजह से निर्णय पाने में बहुत देर हो जाती है जिसका परिणाम यह होता है कि जब वास्तव में वसूली की जानी होती है तब तक उद्यम की हालत निचुड़ चुकी होती है। उस समय बैंक की जो वसूली हो पाती है वह अत्यधिक अल्पराशि होती है। उधारकर्ताओं में गजब की सौदेबाजी करने की क्षमता होती है जो अव्वल दर्जे के कानूनी दिमागों का इस्तेमाल बार-बार की जाने वाली अपीलों में करते हैं, अथवा उधारकर्ता जो प्रभाव बनाकर स्थानीय न्यायालयों से स्थगन आदेश प्राप्त कर लेते हैं - ऐसे उधारकर्ता खास तौर से बड़े उधारकर्ता द्वारा दिए गए अनुचित प्रस्ताव को मान लेते हैं। बैंक द्वारा दिया गया ऋण बौना हो जाता है और प्रवर्तक की इक्विटी, उत्तम-इक्विटी में बदल जाती है। प्रवर्तक जोखिम रहित पूंजीवाद का आनंद उठाता है - यहां तक कि इस समय विकास की अत्यधिक धीमी गति की स्थिति में भी, ऐसे कितने बड़े प्रवर्तक हैं जिन्होंने अपने घर खो दिए हैं या फिर उधारदाता को वैयक्तिक गारंटी देने के बावजूद अपनी जीवनशैली में कटौती कर ली है ?

आम जनता यह समझती है कि बड़े प्रवर्तक ही फायदे में रहते हैं क्योंकि उनके और बैंकों के बीच सौदे बड़े मधुर होते हैं। जहां इस प्रकार की बातों को अहमियत मिल रही है क्योंकि बैंकों में हाल के दिनों में भ्रष्टाचार की संभावित घटनाएं हुई हैं लेकिन मेरे विचार से ओक्कम रेज़र ने इसके लिए और भी प्रासंगिक व्याख्या की है - हमारी प्रणाली ही कुछ इस प्रकार की है कि बैंक मजबूर होते हैं क्योंकि प्रवर्तक काफी बड़े तथा प्रभावशाली लोग होते हैं। जहां हमें बैंकिंग में बेहतर अभिशासन लाने और अधिक पारदर्शिता के लिए अपने प्रयासों को कम नहीं करना है, वही हमें प्रणाली में भी सुधार लाने पर फोकस करना चाहिए।

इस एकतरफा शर्त में मजे बड़े प्रवर्तक उठाते हैं, इसकी भरपाई कौन करता है ? जाहिर है, कि कठिन परिश्रम से बचत करने और इस देश के कर अदा करने वाले लोग करते हैं। एकबारगी उपाय के रूप में कमर्शियल बैंकों ने पिछले पांच वर्षों में 1,61,018 करोड़ रुपए के दिए गए कुल ऋण को बट्टे खाते डाला है, जो जीडीपी का 1.27 प्रतिशत है। बेशक, इसमें से कुछ राशि की वसूली होगी लेकिन प्रणाली में दबावग्रस्त आस्तियों के आकार को देखते हुए आने वाले दिनों में और अधिक राशियां बट्टे खाते डालनी होंगी। इन राशियों को

ध्यान में रखें तो एक आम आदमी के लिए ये हज़ारों करोड़ रुपए बेमानी हैं - जीडीपी के 1.27 प्रतिशत की राशि से सभी प्रकार के खर्चों का भुगतान करते हुए 1.5 मिलियन गरीब बच्चों को देश के सर्वोत्तम निजी विश्वविद्यालयों से पूर्णरूपेण युनिवर्सिटी डिग्री दिलाई जा सकती थी।

परिणाम

मैं इस बात पर पुनः जोर देना चाहूंगा कि कारोबार में पैदा होने वाले जोखिमों से होने वाले नुकसान के प्रति मैं उतना चिंतित नहीं हूँ जितना कि इन नुकसानों में हिस्सेदारी करने के बारे में हूँ - क्योंकि इसका आखिरकार एक परिणाम यह होगा कि नुकसान के विषम एवं अनुचित तरीके से हिस्सेदारी से ऋण लेना महंगा हो जाएगा और ऋण की उपलब्धता भी कम हो जाएगी। ऐसे प्रवर्तक जो इस प्रणाली का दुरुपयोग करते हैं वे यह सुनिश्चित करते हैं कि बैंक ऐसी स्थिति में कारोबारी ऋण के लिए अधिक दर (प्रीमियम) प्रभारित करें। इसके बावजूद कि नीतिगत ब्याज दर 6 प्रतिशत है, बिजली क्षेत्र को आज भी दिये जाने वाले ऋण की औसत ब्याज दर 13.7 प्रतिशत है। ब्याज दर के इस अंतर को ऋण जोखिम प्रीमियम के नाम से जाना जाता है, जिसमें बैंक ऋण का भुगतान न कर पाने में हुई चूक की स्थिति में 5.7 प्रतिशत की बड़ी राशि की क्षतिपूर्ति करने की मांग करते हैं। चूंकि बेईमान प्रवर्तक, इन्हीं बेईमान लोगों के बीच छुपे होते हैं, इसलिए प्रत्येक कारोबारी व्यक्ति टोकरी में रखे हुए खराब अंडे की गंध से प्रभावित होता है। बिजली क्षेत्र को जिस ब्याज दर पर ऋण दिया जाता है यदि उसकी तुलना 10.7 प्रतिशत पर आवास ऋण की ब्याज दर से किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि बिजली क्षेत्र की अच्छी फर्में औसत गृहस्थों से कहीं अधिक भुगतान कर रही हैं क्योंकि बैंकों की यह चिंता होती है कि किंचित दिए गए ऋणों की वसूली हो पाएगी या नहीं। आवास ऋण की तुलना में बिजली क्षेत्र को दिए जाने वाले ऋण पर जोखिम प्रीमियम में 300 आधार अंक का सुधार लाने से वित्त की लागत पर काफी लाभकारी प्रभाव पड़ेगा, शायद उस हद तक या उससे भी अधिक जितना कि किसी मौद्रिक नीति में निभाव के लिए दिया जाता है।

दूसरा परिणाम यह होता है कि कानून भुगतान करवाने के प्रयास में कुछ अधिक ही कठोर हो जाता है। सरफेसी अधिनियम, 2002 को यदि अधिकांश देशों के मानकों की दृष्टि से देखा जाए तो यथालिखित ऋणदाता के पक्ष में अधिक होता है। शायद ऐसा प्रयास कानून बनाने वालों ने इसलिए किया होगा ताकि डीआरटी पर पड़ने वाले बोझ को कम किया जाए और प्रवर्तकों को भुगतान करने के लिए बाध्य किया जा सके। लेकिन इसकी पूरी बाध्यता छोटे उद्यमियों द्वारा महसूस की जाती है, जो न तो महंगे वकील कर सकते हैं न तो न्यायालय जा सकते हैं, जबकि प्रभावशाली प्रवर्तक एक बार फिर कठोर स्थिति से बाहर निकल जाते हैं। छोटे उद्यमियों की आस्तियों

¹ उच्चतम न्यायालय, 22 जनवरी 2013, भारत संघ बनाम डीआरटी बार एसोसिएशन

पर पुनः कब्जा कर लिया जाता है और उन्हें जल्दी से बेच दिया जाता है, जिसके कारण बहुत से अच्छे कारोबार बुझ से जाते हैं जो बैंकों की थोड़ी सी सहायता से बहुत अच्छा कर सकते थे।

कठोर कानून से शायद उतना ही नुकसान होता है जितना कि कमजोर कानून से, इसलिए नहीं कि चूक होने पर इसमें मूल्य का नुकसान होता है बल्कि इसलिए भी कि इससे जोखिम उठाने की प्रेरणा समाप्त होती है। जरा सोचिए मध्यकालीन समय के कारोबारियों के बारे में जो यह जानते थे कि यदि उन्होंने ऋण चुकाने में चूक की तो या तो उन्हें जेल जाना पड़ेगा या उनके सर कलम कर दिए जाएंगे। उसे अपने जोखिमपूर्ण कारोबार को नवोन्मेषी बनाने में क्या प्रोत्साहन मिलेगा ? क्या यह अचरज नहीं है कि उस समय कारोबार करना बहुत ही दकियानूसी हालत में था। वस्तुतः एनवाययू के विराल आचार्य और आईएसबी के कृष्णमूर्ति सुब्रमणियन अपने अध्ययन में यह लिखने को विवश हो गए कि ऐसे देशों में नवोन्मेष बहुत कम हो पाता है जहां, ऋणदाता के पास बहुत कड़े अधिकार होते हैं। या दूसरे शब्दों में, हमारी वर्तमान समस्या का समाधान यह नहीं है कि कानून को और भी कठोर बना दिया जाए बल्कि हमें यह देखना होगा कि चूक की स्थिति में नुकसान की हिस्सेदारी में और अधिक समानता लाई जाए और नुकसान में हिस्सेदारी वहन करने की क्षमता बढ़ाई जाए।

मुश्किल घड़ी में नुकसान की असमान रूप से हिस्सेदारी करने का अंतिम परिणाम यह होता है कि पूरी तरह से स्वतंत्र उद्यम प्रणाली की प्रतिष्ठा दांव पर लग जाती है। जब कुछ कारोबारी अपने विशेष अधिकारों के साथ अपने अस्तित्व का फायदा उठाते हैं, अन्य लोगों के पैसों को जोखिम में डालते हैं किंतु अपने पैसों को कभी जोखिम में नहीं डालते, तब आम जनता और उसके प्रतिनिधि क्रोधित हो उठते हैं। मेरी ऐसे अनेक सांसदों से मुलाकात हुई है जो मौजूदा कार्य-प्रणाली से क्षुब्ध हैं। यदि इन मुद्दों को कमर्शियल परिधि से बाहर निकालकर राजीतिक दायरे में लाया जाए तो यह औद्योगिक विकास के मार्ग को प्रशस्त कर देगा। इसलिए इस क्षेत्र में सुधार की तत्काल आवश्यकता है।

हमें और अधिक संतुलित प्रणाली की जरूरत है, एक ऐसी प्रणाली जो बड़े उधारकर्ताओं को अधिक भार वहन करने को बाध्य करती हो, जबकि छोटे उधारकर्ताओं के लिए उसका व्यवहार अधिक मित्रतापूर्ण हो। हमारी प्रणाली में ऐसे कारोबारों को बंद कर दिया जाना चाहिए जिनसे मूल्य का सृजन नहीं होता है, जबकि ऐसे कारोबार को पुनः जीवित किया और बनाए रखा जाए जो मूल्य का संवर्धन कर सकते हैं। और प्रणाली में संविदा की प्राथमिकता का पालन किया जाए, जिसमें उद्यम द्वारा भुगतान न कर पाने की स्थिति में ऋणदाता को उसमें अधिक हिस्सेदारी और उसपर अधिक नियंत्रण प्रदान किया

जाए, जबकि प्रवर्तकों से यह अपेक्षित हो कि वे और अधिक त्याग करें।

एक बेहतर संतुलन

हम एक बेहतर संतुलन कैसे प्राप्त करें ?

- हम एक बेहतर पूंजी की संरचना से अपनी बात प्रारंभ करते हैं। इसका कारण यह है कि ऐसी अनेक परियोजनाएं हैं जो आज कठिनाई का सामना कर रही हैं, क्योंकि सबसे पहले तो उनकी संरचना बहुत ही कम इक्विटी के साथ की गई थी, यहां तक कि उसे प्रवर्तक द्वारा कहीं अन्यत्र स्थान से उधार लेकर लगाया गया था। और कुछ प्रवर्तक तो जैसे ही परियोजना चलने लगती है इक्विटी को वापस लेने का रास्ता ढूंढ लेते हैं, ऐसी स्थिति में जब बुरा समय आता है तब वास्तव में कोई सहारा नहीं बचता है। उधारदाताओं को यह आग्रह करना चाहिए कि प्रारंभ में ही वास्तविक इक्विटी और अधिक हो, और परियोजना पर कड़ी निगरानी रखें ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि परियोजना चलती रहेगी। प्रवर्तकों को चाहिए कि वे बड़ी परियोजनाओं को छोटी राशि की इक्विटी से वित्तपोषण करने का प्रयास न करें। हमें और अधिक संस्थागत निवेशकों को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है जिनके पास प्रवर्तकों पर निगरानी रखने के साधन हों और वे परियोजनाओं में इक्विटी पूंजी ला सकें।
- बैंकों को चाहिए कि जब उधारकर्ता परेशानी में हो तो उसके प्रति सक्रियता दिखाएं और उसे परेशानी से बाहर निकालने के कड़े प्रयास करें। उधारकर्ता की वित्तीय कठिनाई को हल करने में जितना अधिक विलंब होगा उतना ही अधिक नुकसान उद्यम के मूल्य को पहुंचेगा। कुछ बैंक बहुत कुशल हैं (और उनके पास अच्छे वकील हैं) इसलिए प्रवर्तक भले ही अन्य बैंकों का भुगतान करने में चूक करें किंतु कुशल बैंक का भुगतान निरंतर करते रहते हैं। एक कुशल दिवालियापन प्रक्रिया न होने पर सभी उधारदाता एकजुट हो जाते हैं, जिसके लिए भारतीय रिजर्व बैंक ने दबाव का पहला संकेत मिलते ही उधारदाताओं के एक संयुक्त उधार (जेएलएफ) के गठन का अधिकार प्रदान किया है। जेएलएफ का काम होगा कि वह दबावग्रस्त उद्यम को तत्परता से दबाव से निकालने का उपाय प्रस्तुत करे, जिसमें उद्यम के परिसमापन विकल्प से लेकर पुनर्रचना का विकल्प हो सकता है। इस प्रकार से, हम समझते हैं कि उधारदाताओं में समन्वय पैदा होगा और उधारकर्ता द्वारा

एक उधारदाता से अच्छा और दूसरे से बुरा खेल खेलने पर रोक लग सकेगी।

- सरकार द्वारा डीआरटी और डीआरएटी की संख्या बढ़ाने की योजना बिलकुल सामयिक है, तथा यह और भी प्रभावी बन जाएगी यदि उसकी सुविधाओं को बढ़ा दिया जाए, प्रशिक्षित कार्मिक हों, तथा मामलों को इलेक्ट्रॉनिक तरीके से दर्ज करने एवं उसपर नज़र रखने की सुविधा हो, जैसाकि उच्चतम न्यायालय ने भी सुझाया है। तथा
 - न्यायाधिकरणों के लिए कतिपय मौद्रिक प्रोत्साहन दिया जा सकता है जो विधिवत प्रक्रिया से समझौता किए बिना मामलों के निपटान में लगने वाले औसत समय को कम करते हैं।
 - इस बात पर भी विचार किया जा सकता है कि प्रत्येक पक्षकार को स्थगन लेने की संख्या की कुछ सीमा होनी चाहिए।
 - मामले को चलाते रहने के उद्देश्य से डीआरटी में अपील न की जाए। वस्तुतः, डीआरएटी द्वारा यह अपेक्षा रखी जाए कि उधारकर्ता वादी को डीआरटी द्वारा भुगतान के लिए आदेशित राशि का कुछ हिस्सा जमा करना होगा जैसाकि प्रक्रियागत मामले में कानून² द्वारा निर्धारित किया गया है, बजाय इसके कि नेमी तौर पर ऐसी राशियों को जमा करने से छूट दे दी जाए, जैसाकि मौजूदा समय में अपनाई जा रही प्रथा के बारे में सूचित किया गया है।
 - इस बात का परीक्षण करना श्रेयस्कर होगा, यदि असफल रहने वाले वादी द्वारा होने वाले विलंब की वास्तविक लागत का भुगतान उसकी स्वयं की जेब से करवाया जाए और इस लागत में स्थगित भुगतान पर ब्याज की लागत भी शामिल हो।
- उच्चतम न्यायालय के सुझाव के अनुसार संवैधानिक न्यायालय कानून की भावना का आदर करें और कम से

कम अपील स्वीकार करें। यह मुश्किल से दिखाई देता है कि मानक कमर्शियल मामले द्वारा किन कानूनी बिंदुओं या न्यायिक प्रशासन को खड़ा किया जाता है और सामान्यतया न्यायिक हस्तक्षेप अवज्ञा करने वाले उधारकर्ताओं के पक्ष में होता है जिसकी कीमत उधारदाता को चुकानी पड़ती है।

- डीआरटी और डीआरएटी के आदेशों को अदालतों में चुनौती देना वादी के लिए महंगा बनाया जाए। न्यायालय द्वारा वादी से यह अपेक्षा की जाए कि वह मामले को स्वीकार करने के पहले ऋण के गैर-विवादित हिस्से की राशि जमा करे ताकि नेमी स्वरूप की ओछी अपीलों की संख्या कम हो सके।
- प्रणाली में पेशेवर एजेंटों की भी आवश्यकता है जो प्रवर्तकों का स्थान ले सकें। आस्ति पुनर्निर्माण कंपनियों (एआरसी) से यही अपेक्षा थी, किंतु इसके लिए उन्हें और अधिक पूंजी तथा बेहतर प्रबंधन क्षमता की जरूरत है। इस बात की भी आवश्यकता है कि एक बार उद्यम इस स्थिति में पहुंच जाए कि उससे पर्याप्त मूल्य पैदा होने लगे ताकि वह मूल कर्ज को चुका सके तो उद्यम इस स्थिति में पहुंच जाए कि उससे पर्याप्त मूल्य पैदा होने लगे ताकि वह मूल कर्ज को चुका सके तो उद्यम को पुनः मूल प्रवर्तक के हाथ में सौंपा दिया जाए। इस प्रकार की आवश्यकताओं का गलत अर्थ लगाया गया है और इसे रद्द करने की जरूरत है, अन्यथा एआरसी के लिए इस बात को बहुत कम प्रोत्साहन होगा कि वह फर्म को खड़ा करने में प्रयास और पैसा व्यय करे। वे केवल एक परिसमापक बन कर रह जाएंगे, जैसाकि अभी तक उन्होंने काफी हद तक यही सिद्ध किया है। मैं यह उल्लेख करना चाहूंगा कि और अधिक फर्म जो एआरसी के रूप में लाइसेंस के लिए आवेदन करना चाहती हैं उनके लिए भारतीय रिजर्व बैंक के दरवाजे खुले हैं।
- सरकार दिवालियापन के संबंध में नये कानून बनाने पर कार्य कर रही है, जिसकी बहुत अधिक जरूरत है। उपयुक्त संरचना वाले कानून से स्पष्टता पैदा होगी, पूर्वानुमान लगाया जा सकेगा और पुनर्रचना प्रक्रिया में निष्पक्षता आएगी।

लचीलापन लाना न कि सहिष्णुता बरतना

अंत में मैं मौजूद चिंता जो भारतीय रिजर्व बैंक के विनियमन से संबंधित है और जो मेरे व्याख्यान में चर्चा किए गए मुद्दों से संबंधित

² आरडीडीबी अधिनियम की धारा 21 में अपेक्षित है कि 'न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित उधारकर्ता वादी से लेी जाने वाली कर्ज की राशि या इस तरह देय राशि' की 75 प्रतिशत राशि जमा के रूप रखी जाए। सरफेयसी अधिनियम की धारा 18(1) दूसरा परंतुक के अंतर्गत सरफेयसी अधिनियम के अधीन प्रारंभ की गई कार्रवाई से डीआरएटी को की गई अपील में कोई भी अपील तब तक स्वीकार नहीं की जाएगी जब तक उधारकर्ता अपीलीय न्यायाधिकरण के पास उसके द्वारा देय राशि का पचास प्रतिशत न जमा कर दिया जाए, जैसाकि प्रतिभूत ऋणदाता द्वारा दावा की गई हो या ऋण वसूली न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित की गई हो, जो भी कम हो।'।

नहीं है, उस पर बात करके अपनी बात समाप्त करना चाहूँगा। आज बड़ी संख्या में उद्योग एकजुट होकर बैंकों के पास विनियामकीय अनदेखी का शोर मचाते हैं। वे चाहते हैं कि रिजर्व बैंक 'वास्तविकता' को पहचाने और कार्रवाई भी ऋण अशोध्य माना जाना स्थगित रखे।

यह अदूर-दर्शिता है, खासतौर से बैंकों की। आज, बाजार अनर्जक ऋण और पुनर्चित ऋण के बीच के अंतर को नहीं समझता है और दोनों को दबावग्रस्त ऋण मानता है और तदनुसार बैंक मूल्य की डिस्काउंटिंग करता है। शैक्सपियर के नाम को विकृत करके या फिर एनपीए को चाहे जिस नाम से बुलाए, वह बुरा ही लगता है। वस्तुतः, क्योंकि सहिष्णुता से बैंक के तुलनपत्र अपारदर्शी बन जाते हैं, इसलिए विश्लेषकों और निवेशकों को वह बहुत बुरा लगता है। पूरे विश्व में हाल के वर्षों में बैंकिंग दबाव की प्रत्येक स्थिति से जो मूल सबक मिलता है वह है समस्यामूलक ऋण को पहचानना, उसे चिन्हित करना तथा उसका समाधान करना। अतः ऐसी विनियामकीय सहिष्णुता, जो विनियामकों को प्रिय है, यदि बैंकों के साथ मिलकर समस्याओं को छुपाते हैं और उन्हें आगे की ओर ले जाते हैं, तो यह एक बुरा विचार होगा।

इतना ही नहीं, सहिष्णुता से बैंक अशोध्य ऋणों के लिए प्रावधान करना स्थगित करते रहते हैं। इसलिए ऐसी स्थिति में अंततः जब छुपे हुए अशोध्य ऋण की पहचान नहीं हो पाती है तो वह बैंक की आय और तुलनपत्र पर भारी एवं अत्यधिक अनपेक्षित प्रभाव डालता है। इससे निवेशक की बैंक की स्थिति के बारे में जानने की उत्सुकता बढ़ जाती है और इससे सरकारी क्षेत्र के बैंकों के मामले में एक बड़ी खाली जगह बन जाती है जिसे सरकार को भरना पड़ता है। इस तरह के ऐसे और भी कारण हैं जिनकी वजह से परहेज करने की स्थिति को समाप्त किया जाना चाहिए। या इसे दूसरे शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं कि परहेज करना शुतुरमुर्ग जैसा व्यवहार करना है, जिसमें यह उम्मीद की जाती है कि समस्या स्वतः ही समाप्त हो जाएगी। यह हकीकत नहीं है बल्कि भोलापन कहा जाएगा, क्योंकि पूरे विश्व से यह यही सबक हासिल होता है कि कोई भी समस्या और भी विकराल तब हो जाती है जब उसकी तरफ से मुंह छुपा लिया जाए।

वहीं पर, बैंक भी विनियामक से यह कहते रहे हैं कि ऋण की पुनर्चना के लिए और अधिक लचीलापन दिया जाए ताकि उसे परियोजना के नकदी प्रवाह के अनुरूप बनाया जा सके और इक्विटी लेने की क्षमता पैदा हो सके ताकि दबावग्रस्त परियोजनाओं को थोड़ा सा बचाया जा सके। ये सब कुछ उचित अनुरोध है जिनसे यह उम्मीद की जाती है कि दबाव से अधिक कारगर तरीके से निपटा जा सकेगा।

बैंकों को इस प्रकार का लचीलापन विनियामक पूर्व में प्रदान करने के प्रति तटस्थ रहा है क्योंकि बैंक प्रबंधन ने इसका गलत इस्तेमाल किया था, जो भी हो, इस बात को मानते हुए दबाव का सूक्ष्म प्रबंधन नहीं किया जा सकता है, भारतीय रिजर्व बैंक ऐसे उपायों की संभावना तलाश रहा है जो बैंकों को पुनर्चना में और अधिक लचीलापन प्रदान कर सके। यह वह जोखिम है जो हम उठाने को तैयार हैं बशर्ते कि इससे और अधिक परियोजनाओं के सुधार का मार्ग प्रशस्त हो सके।

कुल मिलाकर, भारतीय रिजर्व बैंक ऐसी सहिष्णुता का विरोध करता है जिनसे समस्याओं को मात्र आगे धकेल दिया जाता है, वहीं भारतीय रिजर्व बैंक और अधिक लचीलापन प्रदान करेगा ताकि आज समस्यामूलक ऋणों का समाधान किया जा सके। मैं यह भी स्पष्ट करना चाहता हूँ कि हम इस लचीलेपन के दुरुपयोग पर निगरानी रखेंगे और यदि इसका दुरुपयोग पाया गया तो उसके साथ अत्यधिक कड़ाई से कार्रवाई की जाएगी।

समापन

अब मैं अपनी बात समाप्त करता हूँ। शायद हम इस कारण से उधारकर्ताओं को उधारदाता की तुलना में इतना ज्यादा बचाने के लिए इच्छुक रहते हैं क्योंकि हमारे मन में सामूहिक रूप से इन साहूकारों के प्रति अत्यधिक नफरत भरी हुई है। लेकिन, आज ये बड़े उधारकर्ता असहाय अशिक्षित किसान नहीं हैं और आज के उधारदाता विशेष प्रकार के साहूकार नहीं हैं बल्कि ये सरकारी क्षेत्र के बैंक हैं - दूसरे शब्दों में कहें तो उधारदाता हम हैं। जब बड़े प्रवर्तक जानबूझकर चूक रकते हैं या सरकारी क्षेत्र के बैंक को पैसा लौटाने में सहयोग नहीं करते हैं, तो वह हम सभी करदाताओं को लूटता है, और हमारी अर्थव्यवस्था के लिए नए निवेश की जरूरतों को पूरा करने के लिए निधि को महंगा बनाता है।

इसका समाधान बहुत कठोर कानून बनाना नहीं है, जिसे बड़े उधारकर्ता मात दे देते हैं और छोटे उधारकर्ता चंगुल में फंस जाते हैं, जरूरत है कि वर्तमान कानून को समय पर और निष्पक्ष रूप से लागू करने की। हमें नई संस्थाओं जैसे दिवालिया न्यायालयों तथा टर्न-अराउंड एजेंटों की आवश्यकता है। अंतिम बात यह है कि हमें अपनी मानसिकता इस प्रकार बदलने की जरूरत है, जहां जानबूझकर या असहयोग करके चूक करने वाला उद्योग का कप्तान बनकर शेर न हो जाए, बल्कि देश के मेहनतकश लोगों के बल पर मुफ्त का माल लूटने वाले को न्यायिक रूप से दंडित किया जाए। मुझे विश्वास है कि यह एक ऐसे परिवर्तन की आवश्यकता है जिसे डॉ. वर्गीस कुरियन की सहमति प्राप्त होगी। धन्यवाद।